□□□□□□□

जनसत्ता 12 जून, 2014 : पहली बार हुआ है कि किसी नई सरकार के सत्ता संभालने पर देश का बुद्धजीवी समाज संदेह और आशंका से ग्रस्त दिखता है□ दक्षिणपंथ लेखकों-बुद्धिजीवियों को यों भी आकर्षित नहीं करता और इसके कारण बहुत स्पष्ट हैं□ दक्षिणपंथ आपको सीमित करता है, खुलने नहीं देता, और प्राय: समाजों और देशों के लि□ त्रासदी लेकर आता रहा है□ □क बार ज□ जमा लेने के बाद इससे पार पाना आसान भी नहीं रहता□ यह भी विचित्र संयोग है कि पिछले दस-पंद्रह सालों में लगभग पूरी दुनिया में दक्षिणपंथ और कट्टर राजशाहियों के विरुद्ध जनमत बना है□ भारतीय उपमहाद्वीप ही नहीं, अरब देशों और कुछ अफ्रीकी और लातिन अमेरिकी देशों में भी आम लोगों ने दक्षिणपंथ को निर्णायक चुनौती दी है और तानाशाहियों और राजशाहियों को लोकतंत्र से प्रतिस्थापित किया है□ और तब भारत में दक्षिणपंथ का सशक्त अभ्युदय! भाजपा को यह जीत वाजपेयी जैसे ‘उदार’ और ‘स्वीकृत’ नेता की बदौलत नहीं मिली, बल्कि उग्र और आक्रामक हिंदुत्व के पैरोकार (बल्कि प्रतीक) माने जाने वाले नरेंद्र मोदी की अगुआई में मिली है□ तो क्या यह माना जा□ कि लाख गवर्नेंस और विकास के नाम पर चुनाव ल□ने का दावा करने के बावजूद दिल्ली के सिंहासन पर ‘हिंदू शक्ति’ ही विराजमान हुई है?

यह जरूरी है कि इस चुनाव के ‘हिंदू कोण’ पर गंभीरता से विचार किया जा□, बावजूद इसके कि प्रगतिशील विचारक भाजपा की जीत को ‘क्रोनी कैपिटलिज्म’ की कारगुजारी ही मान कर संतुष्ट हो जाना चाहते हैं□ वैसे इसमें कोई शक नहीं कि बहुराष्ट्रीय कंपनियां भारत के संसाधनों पर गिद्ध-दृष्टि जमा□ बैठी हैं और अपने हित में गवर्नेंस और विकास के नाम पर देश की व्यवस्था में बदलाव चाहती हैं□ चुनाव प्रचार के दौरान ऐसा भ्रम फैलाया गया मानो भारत किसी भयानक आपदा का सामना कर रहा हो, गर्त में जा रहा हो और उसे तत्काल बचा निकालने की दरकार हो□

राष्ट्रपति प्रणाली की तर्ज पर चुनाव ल□ने के भाजपा के निर्णय से जो स्थिति बनी और पार्टी द्वारा जिस स्तर का और जिस पैमाने पर चुनाव अभियान चलाया गया, उसमें भाजपा ही ‘बदलाव’ का वास्तविक संवाहक बन गई- भ्रष्टाचार विरोधी आंदोलन और ‘आप’ की कमाई भी भाजपा के खाते में□ लेकिन यह विश्लेषण महत्त्वपूर्ण होते हु□ भी भाजपा की दो सौ बयासी और राजग की तीन सौ पैंतीस सीटों का औचित्य पूरी तरह स्पष्ट नहीं कर पाता□ वैसे भी पिछ□ों और दलितों की राजनीति करने वाले दलों का सफाया किस प्रकार संभव हो सका- सपा, राष्ट्रीय जनता दल, बसपा और यहां तक कि विकास के ‘बिहार मॉडल’ का दावा करने वाला जद (□की)? फिर क्या यह माना जा□ कि नरेंद्र मोदी की चुनाव सभाओं में उम□ युवाओं ने जाति, धर्म, वर्ग, क्षेत्र की सीमा लांघ कर ‘अच्छे दिनों’ की खातिर भाजपा को यह बहुमत दिया? आखिर 1990 के बाद पैदा हु□ युवाओं को ‘धर्मनिरपेक्षता’ को लेकर नरेंद्र मोदी के साथ जाने में क्या हिचक हो सकती थी, यह पी□ी तो मंडल-कमंडल के प्रभाव से प्राय: मुक्त है□ उस दौर से दुनिया बहुत आगे ब□ गई है, भारत आगे निकल आया है- आज का भूमंडलीकृत भारत! भूमंडलीकरण की प्रक्रिया स्थानीय अंतर्विरोधों को ढंकने-तोपने, बल्कि पचा जाने का भी सामर्थ्य रखती है□

हमारा दुर्भाग्य यह रहा कि आजादी के बाद देश में धर्मनिरपेक्षता की जो राजनीति चलाई गई, विशेषकर सत्तर के दशक के बाद, उसमें बहुसंख्यक समाज के विखंडन को ही उसका आधार बनाया गया□ यह मान कर चला गया, बल्कि विश्वास दिलाया गया कि पिछ□ और दलित हिंदू इस सीमा तक ‘धर्मनिरपेक्ष’ हैं, मानो वे हिंदू समाज के अंग ही नहीं हैं, बल्कि उससे बाहर हैं□ उनकी कोई धार्मिक आकांक्षा नहीं हो सकती, आग्रह नहीं हो सकता□ □क जाति के रूप में हिंदुओं के बहुसंख्यक होते हु□ भी उनके ऐतिहासिक दमन, सत्ताहीनता, वर्चस्वहीनता के ऊपर हिंदू समाज के अंदर बहुसंख्यक दलित-पिछ□ी जातियों के ऐतिहासिक दमन की और इसके □वज में क्षतिपूर्ति की बात की गई□ यह □क ही ‘सिक्के के दो पहलू’ जैसा है□

इतिहास में हु□ अन्याय को आधार बना कर हिंदू (‘सांप्रदायिक’) राजनीति के पैरोकार स्वतंत्र भारत में सत्ता और व्यवस्था में हिंदुओं का वर्चस्व चाहते रहे, जबकि इसी आधार पर ‘धर्मनिरपेक्ष’ दल ‘सामाजिक न्याय’ के नाम पर पिछ□ों-दलितों के लि□ सत्ता की कुंजी मांगते रहे□ पहली राजनीति के निशाने

पर मोटे तौर पर मुसलमान और 'मुसलमान-परस्त' दल रहे, जबकि दूसरे प्रकार की राजनीति मुसलमिों को अपने साथ लेकर 'हदिू' सवर्णों को अपने नशिाने पर लेती रही।

धर्मनरिपेक्ष दलों ने सवर्ण-वरिोध की आ में खुलेआम हदिू प्रतीकों पर हमला कयिा। उन्होंने हदिू धर्म को ब्राह्मणों या अधकिसे अधकिसवर्णों का धर्म बना कर प्रस्तुत कयिा। आमतौर पर 'प्रगतशिील', 'धर्मनरिपेक्ष' और 'सामाजकि न्याय' केपाले में रहने वाले बुद्धजीवियों ने इस राजनीति का साथ दयिा, इसे परपिुष्ट कयिा।

आज इसीलि भारत की केंद्रीय सत्ता पर हदिुत्ववादयिों को आसीन देख वे हतप्रभ हैं। उनकेलि हदिुओं का 'ि क' होकर मतदान करना कल्पनातीत है। वे सपने में भी नहीं सोच सकते थे कि अगर पंद्रह या पचीस प्रतशित आबादी को वोट बैंक केरूप में ि कजुट होकर मतदान केलि प्रेरति कयिा जा सकता है, तो यह काम पचासी प्रतशित आबादी केलि बखूबी कयिा जा सकता है। लेकनि अगर पीछे मु कर देखें तो पछिले तीस-पैंतीस सालों की राजनीति इसी बात केलि बहुसंख्यक समुदाय को उकसाती आ रही है। बल्कि स्वतंत्रता केबाद ही इसकी शुरुआत हो चुकी थी।

अन्याय, वंचना, पराजय-बोध इसकेमूल में है। हदिू भारत में बहुसंख्यक जरूर रहे हैं, लेकनि पछिले लगभग आठ सौ सालों में हदिू जाति ि कांध दृष्टांतों को छो कभी शासक जाति नहीं रही- कम-से-कम केंद्र में। ि केश्वरवादी साम्राज्यवाद केबाद प्रोटेस्टेंट उपनवेिशवाद ने लगातार सैकि ों साल तक हदिुओं को भारत की केंद्रीय सत्ता से दूर रखा। ि केश्वरवादी केंद्रीय सत्ता केखलिाफ परधि पर 'पैगन' (हदिू, मूर्तपिूजक, प्रकृतपिूजक, बहुदेववादी) प्रतरिोध कभी इतना सक्षम नहीं बन सका कि वह उसे वस्थिापति कर दे। मध्यकाल में इसी दौर में भारतीय समाज वजियी और वजिति, मूर्तभिंजक और मूर्तपिूजक, ि कदेववादी और बहुदेववादी केबीच सामंजस्य बैठाने की कोशशि कर रहा था।

धर्मांतरण भी इस प्रक्रयिा का अंग था। स्वैच्छकि धर्मांतरण कोई नई बात नहीं थी। हदिू बि ी संख्या में बौद्ध बने थे, और बाद में इसका उलटा भी हुआ था। लेकनि बलपूर्वक धर्मांतरण का संभवत: पहला अनुभव भारत को हो रहा था। पहली बार भारतीय समाज ऐसे आक्रांताओं का सामना कर रहा था और उनकेसामने परास्त भी हो रहा था, जो अपना राजनीतकि ही नहीं, धार्मकि प्रभुत्व भी स्थापति करना चाह रहे थे। इस कोशशि केतहत बलात धर्मांतरण भी हो रहा था और उपासना स्थलों को भी नष्ट कयिा जा रहा था। यहां न ज्ञान, न कसिी वदिया की कुछ चल रही थी, न कोई शास्त्रार्थ था। जो आ थे उन्हें 'असभ्यों' को 'सभ्य' बनाना था। पैगन, नास्तकिों को 'आस्तकि' यानी ि कईश्वर का उपासक बनाना था।

मुसलमि सत्ता जब ि कबार स्थापति हो गई तो इसका ि कऔर परणिाम हुआ- कई क्षेत्रों में हदिू सामाजकि पदानुक्रम में शोषण और भेदभाव की शकिार 'नम्नि' जातियों को इस्लाम के'समानता' केसद्धिांत में अपनी मुक्ति का मार्ग दखिाई प ा। इन जातियों का इस्लाम (बाद में कुछ हद तक ईसाइयत में) में सामूहकि धर्मांतरण लगभग लगातार चलता रहा- भले ही छटिपुट रूप से। इससे 'समाहतिीकरण' की प्रक्रयिा को तो बल मलिा ही, इस्लाम धर्म और इस्लामी शासकों केप्रति स्वीकार्यता भी बि ी- इस हद तक कि तेरहवीं सदी से लेकर उन्नीसवीं सदी केमध्य तक भारत की केंद्रीय सत्ता पर कमोबेश उनका नयिंत्रण बना रहा।

इसकेबाद आया उपनवेिशवाद का दौर। ब्रटिशि उपनवेिशवाद ने समूचे भारत केराजनीतकि स्वरूप को बदल दयिा। इसने मुसलमानों को भी कुचला और हदिुओं को भी। यह ि कऐसी व्यवस्था थी जसिमें देशी साधनों केदोहन से सात समंदर पार की सभ्यता समृद्ध हो रही थी और भारतवासी कंगाल हो रहे थे। इस दौर में, उन्नीसवीं और बीसवीं सदी में यूरोप में ि कओर पूंजीवाद का वकिास हो रहा था तो दूसरी ओर नई राष्ट्रीयता ं सरि उठा रही थीं और इसी आधार पर राष्ट्र-राज्य वकिसति हो रहे थे। भारत में उपनवेिशवाद केमुकाबले में राष्ट्रवाद मजबूत हो रहा था, तमाम ववधिताओं केरहते।

राष्ट्रीय एकता और स्वशासन का अधिकार- ये दो चुनौतियां इसके सामने थीं।

भारतीय राष्ट्रवाद के समक्ष दो विकल्प थे- सार्वभौमवाद, जिसमें हर पहचान, हर सामाजिक-सांस्कृतिक इकाई को मान्यता थी और जिसकी विश्व-दृष्टि मानव समाज की समस्त इकाइयों के सृजनात्मक सहयोग और सहकार से निर्मित हुई थी। सार्वभौमवाद की जड़ें भारतीय सभ्यता में थीं और इसके पैरोकार और सिद्धांतकार रवींद्रनाथ और महात्मा गांधी थे, और कहीं न कहीं विवेकानंद भी। दूसरा विकल्प था यूरोप के राष्ट्र-राज्य को अंगीकार कर लेना। इससे भारत राजनीतिक रूप से एक हो सकता था और राष्ट्रवादियों को यही अभीष्ट भी था। आखिरकार भारत ने यूरोप के राष्ट्र-राज्य मॉडल को ही अपनाया।

मगर यूरोप में राष्ट्रीयताओं के उदय और राष्ट्र-राज्यों के अस्तित्व में आने का एक नकारात्मक प्रभाव बीसवीं सदी की शुरुआत में ही दृष्टिगोचर होने लगा। यूरोप में राष्ट्रीयता का आधार एक प्रजाति, एक साझा अतीत और भूभाग बना था। भारत में धर्म को राष्ट्रीयता का आधार मानने का आग्रह बढ़ने लगा। अगर धर्म यूरोप में राष्ट्रीयता का आधार होता तो समूचा यूरोप एक राष्ट्र होता। जहां हिंदू पुनरुत्थानवादी अखंड भारत में हिंदुओं का वर्चस्व चाहते थे, वहीं मुसलिम राष्ट्रवादियों ने आगे चल कर मुसलमानों के लिए एक देश की ही मांग कर दी।

यह दिलचस्प है कि हिंदू और मुसलिम राजनीति दोनों भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन की मुख्यधारा में शामिल नहीं थीं। 1917 का साल बहुत महत्त्वपूर्ण था। देश के अंदर चंपारण सत्याग्रह से गांधीजी स्वतंत्रता आंदोलन की धुरी बन गए थे, तो देश के बाहर रूस में 'सर्वहारा का राज' स्थापित हुआ था जिसका गहरा और दूरगामी असर भारत पर भी हुआ था। देश के अंदर समाजवादी और वामपंथी धारा का निर्माण हुआ था। स्वयं जवाहरलाल सोवियत समाजवाद से बहुत प्रभावित थे, दूसरी ओर भगतसिंह और चंद्रशेखर आजाद जैसे युवाओं के नेतृत्व में क्रांतिकारी धारा बनी थी, भारत में मजदूरों-किसानों का राज स्थापित करना जिसका उद्देश्य था। इसके पहले की जो क्रांतिकारी जमातें थीं वे राष्ट्रवाद से ओतप्रोत थीं और स्वशासन की स्थापना और अपनी सभ्यता-संस्कृति की रक्षा के उद्देश्य से कार्य कर रही थीं। इस धारा में सक्रिय कई नेता बाद में हिंदुत्व की राजनीति में सक्रिय हो गए, जैसे सावरकर, हेडगेवार और गुरु गोलवलकर। जारी...

फेसबुक पेज को लाइक करने के लिए क्लिक करें- https://www.facebook.com/Jansatta

ट्विटर पेज पर फॉलो करने के लिए क्लिक करें- https://twitter.com/Jansatta